International Journal of Information Movement Vol.2 Issue III (July 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 100-106

विद्यापति के गीतिकाव्य में संगीतात्मकता

विवेक कुमार
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,
ति. मां. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
Email: vivekmadhuban@gmail.com

भारतीय इतिहास का मध्ययुग हिंदी साहित्य का आदिकाल (1000–1325 ई.) है। यह वह दौर था जब समाज में कई विरोधी प्रवृत्तियां एक साथ ही विद्यमान थी। यही कारण है कि इस दौर के कवियों के व्यक्तित्व में भी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। हिंदी साहित्य के आदिकालीन कवियों में मैथिल कोकिल विद्यापति का नाम अग्रगण्य है। विद्यापति में भी हमें एक साथ परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। वे एक तरफ उत्कट श्रृंगारी कवि माने जाते हैं, तो दूसरी तरफ सरस विलास गीत के रचयिता तथा भक्तिपूर्ण नचारियों एवं करुण गीतों के स्रष्टा भी हैं। वे शिव के अनन्य उपासक थे, जबकि उनके अधिकांश पद राधा–कृष्ण को समर्पित हैं। वास्तव में हिंदी साहित्य के आदिकाल पर विद्यापति के इस इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व का बहुत गंभीर प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप, हिंदी साहित्य के प्रायः हरेक काल में ये विरोधाभाषी प्रवृत्तियाँ विद्यमान दिखती हैं। इसे हिंदी साहित्य को विद्यापति की देन माना जा सकता है। उनके व्यक्तित्व की पहचान उनके द्वारा रचित विविध प्रकार के काव्य तथा उनमें अंतर्निहित संगीत से हो सकती है।

काव्य एवं संगीत का संबंध प्राचीन काल से ही है। काव्य के अंतर्गत कविता या पद अपना संपूर्ण प्रभाव तब तक नहीं डाल पाते जब तक उनमें संगीतात्मकता नहीं होती। संगीत मनुष्य को प्रकृति का उपहार है। हर्षोल्लास के क्षणों से लेकर वेदना के क्षणों तक आदिम मनुष्य गाकर ही अपनी खुशी और वेदना प्रकट करता रहा है। इन दोनों श्रेष्ठ कलाओं का मिश्रित रूप ही गीतिकाव्य है। गीतिकाव्य का उद्‌गम वेद से हुआ है। वेद में उषा, विष्णु, इंद्र, वरुण, सविता, अदिति और मरुत आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति की गई है और उनके गुणों का पूरी भाव विह्वलता के साथ वर्णन किया गया है ।वैदिक ऋषियों द्वारा अपनी तथा संपूर्ण विश्व की सुख समृद्धि के निमित्त देवी देवताओं के प्रति की गई प्रार्थना ही इन गीतों में भावबद्ध हुई है ।वेद के मंत्रों और सूक्तों में विशेषकर सामवेद और उससे संबद्ध ब्राह्मण ग्रंथों में संगीत के स्वरुप, आधारभूत स्वर, रचनाविधि आदि का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। गीतिकाव्य के प्रमुख घटकों में छंदबद्धता, गीतिमयता, संक्षिप्त भावना की अभिव्यक्ति तथा घटना प्रवाह की तीव्रता महत्वपूर्ण हैं।

लौकिक साहित्य में गीतिकाव्य की परंपरा का आरंभ कालिदास से होता है। बौद्ध–सिद्धों ने विक्रम की नवीं शताब्दी के लगभग अपने समय की प्रचलित भाषा में 'चर्यापदों' की रचना की थी, किन्तु, उन पदों में भाषा की शुद्धता एवं प्रवाह न रहने के कारण गेयत्व नहीं मिलता। काव्य की दृष्टि से भी उसमे न वैसी सरलता दृष्टिगत होती है और न ही रमणीयता। दोषमुक्त और विशुद्ध पदों का संग्रह सर्वप्रथम हमें विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के भक्तकवि जयदेव द्वारा रचे गए प्रसिद्ध 'गीत गोविंद' में मिलता है, जो हिंदी में न होकर संस्कृ

त में रचित है। हिंदी गीतिकाव्य परंपरा में सर्वप्रथम विद्यापति के गीतों में ही गीतिकाव्य विषयक साहित्यिकता के दर्शन होते हैं। हिंदी गीतिकाव्य परंपरा में उनकी स्थिति 'अभिनव जयदेव' के रूप में है। उन्होंने गीतिकाव्य के अंतरंग और बहिरंग दोनों को संवारा है और परवर्ती कवि उनकी शैली, संगीत और शब्दानुशासन के ऋणी हैं।1 विषय की दृष्टि से गीतिकाव्य तीन तरह के होते हैं, यथा, श्रृंगारिक, धार्मिक और नैतिक गीतिकाव्य, किन्तु विद्यापति के अधिकांश गीतिकाव्य धार्मिक–श्रृंगारिक प्रकृति के हैं।

परंपरा का पालन करते हुए विद्यापति ने संस्कृत में ग्यारह शास्त्रीय ग्रंथों तथा अवहट्ट में दो रचनाएं की (कीर्तिलता और कीर्तिपताका)। उन्होंने 'देसिल बयणा सब जन मिट्ठा' कहते हुए देशी भाषा में रचना पर जोर दिया और मिथिला प्रदेश की लोकभाषा मैथिली में शिव–पार्वती, राधा–कृष्ण, विष्णु, गंगा, जानकी, दुर्गा आदि देवी–देवताओं को समर्पित अनेक स्तुतिपरक गीतों की रचना की, जो 'पदावली' में संग्रहित हैं। डॉ नगेंद्र का मानना है कि 'पदावली में विद्यापति ने कृष्ण का जो स्वरुप चित्रित किया है वह महाभारत के 'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे' से नितांत भिन्न है। महाभारत में राधा जहाँ कृष्ण की प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाई देती हैं, वहीं विद्यापति पदावली में कृष्ण की उद्दाम कामवासना से प्रेरित राधा का रूप देखने को मिलता है' ।2 आचार्य शुक्ल की तो स्पष्ट मान्यता है कि 'विद्यापति ने श्रृंगार की रचना लौकिक आधार पर की है और उसका कोई धार्मिक आशय निकालना उचित नहीं।' दूसरी तरफ, मैनेजर पाण्डेय के अनुसार 'विद्यापति के पद में सौंदर्य चेतना का आलोक, भावानुभूति की तीव्रता, घनत्व एवं भावुकता और लोकगीत तथा संगीत की आंतरिक सुसंगति है। कुछ आलोचकों का मत है कि विद्यापति के गीत लोकगीत के अधिक निकट हैं और उनमें संगीत की शास्त्रीयता का अभाव है। विद्यापति के गीतों में संगीत के तत्वों का अभाव नहीं है, क्योंकि लोचन कवि ने रागतरंगिनी में विद्यापति के गीतों की संगीतात्मकता का विशद विवेचन किया है। विद्यापति के गीतों का प्रभाव सूरदास के लीला पदों के रूप पर दिखाई देता है।'3 वास्तव में कुछ विद्वान आलोचक विद्यापति की रचना में धर्म और अध्यात्म खोजने वालों पर लाठी लेकर दौड़ते हैं। ध्यातव्य है कि परवर्ती आलोचनाओं में भी कहा गया है कि श्रृंगार भावना में तन्मयता की गंभीर अनुभूति आध्यात्मिकता में रूपांतरित हो जाती है। इस सहमति के बावजूद कुछ विद्वान शुक्ल जी के निष्कर्ष को नहीं मानने में पाप समझते हैं और विद्यापति की रचनाओं को गहराई से अनुशीलन करने के बजाय स्थापित मान्यताओं के समर्थन में झंडा बुलंद करते हैं। विद्यापति की रचनाओं को घोर श्रृंगारिक सिद्ध करने वालों और उसमें केवल अश्लीलता ही ढूंढने वालों को खजुराहो की मूर्तियों में आध्यात्मिकता की खोज करने वालों से सीख लेने की जरूरत है। विद्यापति के गीतिकाव्य (पदावली) उसी तरह राग को ध्यान में रखकर रचित हैं जैसे सूरदास के पद। जिन आलोचकों ने विद्यापति के बाजत 'द्रिगी–द्रिगी धौद्रिम द्रिमिया' जैसे कई गीत पढ़े होंगे और विद्यापति के अन्य सारे गीतों में भी राग की सुसंगति बिठाकर उन्हें देखा होगा, वे निश्चित रूप से विद्यापति के गीतिकाव्य में गुंथे हुए संगीत से प्रभावित होकर विद्यापति को हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर समझेंगे। सर्वविदित है कि विद्वानों से

लेकर हलवाहों तक की मण्डली में विद्यापति के पदों की लोकप्रियता का कारण इसकी सहज संगीतात्मकता, सरल सम्प्रेषणीयता और उसमें लोकचित्त की भावनाओं की अनुगूंज है।

विद्यापति 'पदावली' में लिखित गीतिकाव्य अपनी संपूर्ण सुन्दरता के साथ मुखरित हुआ है। इसकी भाषा लंबे समय तक भाषाविदों के बीच विवाद का कारण रहने के बाद अंततः हिंदी भाषा स्वीकार कर ली गयी है। 'पदावली' में माधुर्य का सागर उमड़ा है, जिसकी हर पंक्ति अपनी भाव भाषागत मिठास के कारण अद्वितीय है। विद्यापति ने अपने गीतों की रचना शब्द और संगीत के अपूर्व योग से की है, इसीलिए 'पदावली' की संपूर्ण रचना अनोखे माधुर्य से युक्त और गेय है। संपूर्ण काव्य में रस का एक अखंड स्रोत विद्यमान है जो कवि विद्यापति की गीतात्मक प्रतिभा का परिचय देता है। भावनाओं का माधुर्य, संगीतात्मकता, पद–लालित्य, राग–रागिनियों से युक्त संगीत की मर्यादा इत्यादि सभी विशेषताएं पदावली में परिलक्षित होती हैं। संगीतात्मकता उनके गीतों की आत्मा है। वे संगीत के पूर्ण ज्ञाता है, पदावली के गीत में राग–रागिनियों का स्पष्ट निर्देश मिलता है।4 विद्यापति ने अपने गीतों में शब्द चयनता और राग बद्धता को इतनी बारीकी से साधा
है कि उनके गीत उनके समय में ही लोक प्रचलित हो गए थे। आज भी मिथिला क्षेत्र में किसी शिवभक्त द्वारा त्रिपुंड चढ़ाए, डमरू हाथ में लिए तन्मय होकर 'कखन हरब दुःख मोर हे भोलानाथ' या किसी वृद्ध को 'तातल सैकत बारिबिंदु सम सुत मित रमनि समाज, ताहे बिसारि मन ताहि समरपिनु अब मझु हब कौन काज, माधव, हम परिनाम निरासा' भाव विभोर होकर रागतालबद्ध रूप में गाते हुए देखा जा सकता है। इनके गीतों में अनुभूति की सघनता इतनी तीव्र है, पदों में लालित्य इतना सुन्दर है, संगीत की झंकार ऐसे प्रस्फुटित हो रही है कि इसका पाठक इसे गाए बिना खुद को रोक नहीं सकता। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है –

'जय जय भैरवि असुरभयाउनि, पसुपतिदृभामिनि माया ।
सहज सुमति वर दिअ हे गोसाउनि, अनुगति गति तुअ पाया ।।
————————————————————————
————————————————————————
घन घन घनन घुघुर कत बाजए, हन हन कर तुअ काता ।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरु जनि माता ।।'5

इस प्रकार काव्य सौष्ठव से परिपूर्ण विद्यापति के गीतिकाव्य से हिंदी साहित्य ही नहीं बल्कि मैथिली साहित्य भी उपकृत हुआ है।

विद्यापति ने अपने पदों की रचना में संगीत पर यथासाध्य दृष्टि रखी है। विद्यापति के काल में मिथिला क्षेत्र में गान विधा का बहुत अधिक प्रचलन था। मिथिला के कर्नाट राजवंश के राजा नृत्य संगीत के आश्रयदाता तो थे ही, साथ ही वे स्वंय इन कलाओं के मर्मज्ञ भी थे। विद्यापति ने कर्नाट वंश के अंतिम राजा हरिसिंह के संगीत ज्ञान को बड़े गौरव से याद किया।6 विद्यापति की 'पदावली' स्वंय इस बात की सूचक है कि विद्यापति संगीत कला के मर्मज्ञ थे। भावात्मक उत्कर्ष की चाशनी में लिपटे इनके पदों में राग, वाद्य एवं संगीत के अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तथा शब्द संगीत, नाद संगीत और भाव संगीत– तीनों एकमेक होकर ऐसी त्रिवेणी बह रही है, मानो उसमें यमुना की शांति और धीरता हो, गंगा की

निश्छलता और पवित्रता हो तथा सरस्वती की अदृश्यता हर तरफ मौजूद हो। इनको देख कर कहा जा सकता है कि वे संगीत के पूर्ण ज्ञाता थे। यही कारण है कि वाद्य संगीत के सामंजस्य से उन्होंने अपने गीतों में ऐसा सांगीतिक परिवेश समाहित किया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी अभिव्यंजना और काव्य भाषा सांगीतिक भाव–भंगिमा में ओत–प्रोत हो गई है। 'माधव कत तोर करब बड़ाई', 'सखि हे, हमर दुखक नहि ओर', 'सखि की पूछसि अनुभव मोहि', 'उगना रे मोर कतए गेलाह', 'बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे', 'जय जय भैरवि असुर भयाउनि', 'नाहि करब बर हर निरमोहिआ', 'आगे माइ जोगिआ मोर जगत सुखदायक दुःख ककरहु नहि देल' जैसे गीतों के पद जब भी पढ़े जाते हैं तो नितांत लयहीन मनुष्य के मुंह से भी अपने आप ही धुन और लय फूट पड़ते हैं। आश्चर्यजनक यह है कि इन गीतों में संगीत कहीं भी थोपा हुआ प्रतीत नहीं होता, अपितु रागात्मक अनुभूतियों से समन्वित होने के कारण उनमें संगीतात्मकता स्वंयमेव झलकती है। संगीत कला के आश्रयदाता राजाओं के साथ रहते हुए वे संगीत कला में इतने निष्णात हो गए थे कि वे संगीत के मर्म को भली भांति पहचानते थे। इसीलिए उन्होंने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए राग–रागिनियों का आश्रय लिया। नेपाल तालपत्र, भाषागीत संग्रह, रागतरंगिनी, तरौनी तालपत्र, रामभद्रपुर तालपत्र, जॉर्ज ग्रियर्सन लिखित मैथिली क्रेस्टोमैथी आदि से विद्यापति के जो गीतिकाव्य प्राप्त हुए हैं, उसके शीर्ष पर रागों के नाम भी उल्लिखित हैं कि कौन सा गीत किस राग में गाया जाएगा। विद्यापति के राग से अनुराग का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

डॉ सुभद्र झा द्वारा संपादित 'सॉन्स ऑफ विद्यापति' में भी कहा गया है कि विद्यापति के सभी पद किसी न किसी राग रागिनी में बद्ध हैं।7 'सॉन्स ऑफ विद्यापति' में जितने भी पद संकलित हैं, वे सभी रागबद्ध हैं। आरंभिक 56 गीत मालव राग में, 57 से 130 तक की गीत घनाक्षरी राग में, 131 से 135 आसावरी राग में, 136 से 146 तक मलारी राग में, 147वा सामरी राग में, 148 से 154 आसावरी राग में, 155 से 157 तक केदार राग में, 158 से 162 तक कानड़ा राग में, 163 से 194 तक कोलार राग में, 195 से 202 तक सारंगी राग में, 203 से 207 तक गुंजरी राग में है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है –

मालव राग

'चरन कमल कदली विपरीत
हास कला से हरए साँचीत।
के पतिआओब एहु परमान
चम्पकें कएल पुहबि निरमान।'

धनछी राग

'अपनेहि पेमक तरुअर बाढ़ल
कारण किछु नहि भेला।
शाखा पल्लव कुसुमे बेआपल
सौरभ दह दिस गेला।'

बरड़ी राग

'कअनो वर आनल तपसिआ।

गोरि मुगुधि भेलि देखि रंगरसिआ।।
नयन अनल काजर कहाँ लाओब
जटा गांग गोहे कैसे कए चुंबाओब।।'

सारंगी राग
'सामर सुन्दर जे बाटे आएल
तें मोरि लागलि आँखि
आरति आँचर साजन भेले
सबे सखीजन साखी।'

काव्य और संगीत का सुन्दर सामंजस्य विद्यापति के निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए –

'भल हर भल हरि भल तुअ कला ।
खन पितबसन खनहि बघछाला।।
खन पंचानन खन भुज चारि ।
खन संकर खन देव मुरारि।।
खन गोकुल भए चराइअ गाए।
खन भिखि मांगिअ डमरू बजाए ।।
खन गोविन्द भए लिअ महादान।
खनहि भसम भारू कांख बोकान।।
भनइ विद्यापति बिपरित बानि।
ओ नारायण ओ सुलपानि।।8

काव्य में संगीत तत्व के निर्वाह के लिए अंत्यानुप्रास (तुक) का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विद्यापति ने भी काव्य में संगीतात्मकता उत्पन्न करने के लिए अपने पदों में अंत्यानुप्रास (तुक) अनिवार्यतः रखा है। पदावली में तुक प्रायः दो पद्धति से व्यवहृत हुआ है। कुछ पद क–क, ख–ख, ग–ग–क श्रृंखला बनाते है तथा कुछ पद क–ख–क–ख, ग–घ–ग–घ।9 पदावली के पदों में विद्यापति के तुक का कौशल देखते ही बनता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित गीत देखिए –

'बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे।
छोड़इत निकट नयन बह नीरे।।
करनोरि बिलमओ बिमल तरंगे।
पुनि दरसन होए पुनमति गंगे।।
एक अपराध घमब मोर जानी।
परमल माए पाए तुम पानी।।
कि करब जप–तप जोग–धेआने।
जनम कृतारथ एकहि सनाने।।

भनई विद्यापति समदजों तोही।
अन्तकाल जनु बिसरह मोही।।'10

संगीत की 'लय' भावों को तीव्र बनाती है अतः गीतिकाव्य में संगीत के साथ भावों का उत्कृष्ट समायोजन होना भी अति आवश्यक है। विद्यापति ने अपने पदों में स्वर एवं शब्दों को संतुलित एवं समन्वित कर लय के द्वारा रास के वातावरण को वाद्य यंत्रों की ध्वनि से अत्यधिक मधुर बना दिया है। वास्तव में वाद्य के बिना संगीत अधूरा है। विद्यापति ने अपने कई गीतों में सांगीतिक वातावरण के निर्माण के लिए विभिन्न वाद्ययंत्रो का नामोल्लेख किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है –

'बाजत द्रिग द्रिग धौद्रिम द्रिमिया
नटति कलावति माति श्याम संग
कर कर ताल प्रबंधक धुनिया।
डम डम डम डिमिक डिम मादल
रुनु झुनू मंजिर बोल।।
किंकिन रन रनि बलआ कन कनि
निधुबन रास तुमुल उतरोल।
बिन रबाब मुरज स्वर मंडल
सा रि ग म प ध नि सा बहु विधि भाव।
घटिता घटिता धुनि मृदंग गरजनि
चंचल स्वर मंडल करू राव।
भ्रम भर गलित लुलित कबरी युत
मालति भाल बिथारलि मोति।
समय बसंत रास रस वर्णन
विद्यापति मति शोभित होति'।'

ध्यातव्य है कि किसी कविता का प्रसार क्षेत्र तब अधिक विस्तृत होने लगता है जब वह लोकभाषा में रचित हो और प्रसार क्षेत्र के विस्तार के लिए उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कारक है उसमें संगीत तत्व की उपस्थिति अर्थात् उसमें लयात्मकता और गीतात्मकता हो। 'रूस में आज भी आम लोग अपने कवियों की कविताएं पढ़ते और याद रखते हैं। इसका मूल कारण यह है कि वहाँ आज भी कविता का स्वरुप लयात्मक और गीतात्मक है।'11 जनश्रुति के अनुसार विद्यापति के गीतिकाव्य में मौजूद संगीत में ऐसा जादू था कि बंगाल के चौतन्य महाप्रभु के कानों में जब ये मधुर पद पड़े तो वे मन्त्र–मुग्ध हो उठे और ढूँढ–ढूँढकर विद्यापति के पद गाने लगे। इन पदों को गाते–गाते कई बार भावावेश में वे मूर्छित तक हो जाते थे। इसी कारण चौतन्यदेव की शिष्य–परम्परा में विद्यापति के पदों को गाने का प्रचलन बढ़ता गया। रविन्द्र नाथ टैगोर ने भी विद्यापति पदावली से प्रभावित होकर राधा–कृष्ण के प्रणय को समर्पित 'भानु सिंह ठाकुर पदावली' की रचना की। विद्यापति की पदावली में सम्मिलित

गीतिकाव्य की विशिष्टता के कारण ही मिथिला क्षेत्र के कई मंदिरों में आज भी इनके मधुर गीत गूंजते हैं। रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि 'दूसरे की भक्ति करके हम तीसरे की भक्ति के अधिकारी हो सकते हैं। राम पर अनन्य भक्ति करके हनुमान, अन्य राम भक्तों के भक्ति के अधिकारी हुए' ।12 विद्यापति के गीतों, विशेषकर भगवान शिव को समर्पित गीतों के भावात्मक उत्कर्ष के कारण ही वे शिव भक्तों के भक्ति की अधिकारी हुए। मिथिला क्षेत्र में आज भी ईश्वर की भांति इनकी मूर्ति की पूजा की जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास में किसी अन्य कवि को यह सौभाग्य आज तक प्राप्त नहीं हुआ है ।किसी कवि के लिए उसके पाठक और श्रोता की तरफ से इससे बड़ा ईनाम और क्या हो सकता है। हिंदी साहित्य के किसी विशेष आलोचक वर्ग द्वारा भले ही विद्यापति को श्रृंगारी कवि सिद्ध कर हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में उनके योगदान को सिरे से खारिज कर उन्हें हाशिये पर धकेलने की कोशिश की गई हो, किन्तु जब भी गीतिकाव्य में संगीतात्मकता की बात चलेगी विद्यापित का नाम बिजली की चमक की भांति हिंदी कविता प्रेमियों के मस्तिष्क में कौंध जाएगा। संगीत एवं लय के साथ भाव का मणिकांचन सहयोग और अक्षर मैत्री का सुन्दर और सटीक नियोजन कर पदों को श्रुति मधुर बना देने की कला वाले कवि हिंदी साहित्य जगत में विरले ही मिलते हैं। यही कारण है कि विद्यापति पदावली की मधुर तान बंगाल और मिथिला के अमराईयों में आज भी कोकिल की मधुर तान की भांति चहकती हैं।

संदर्भ

1. आधुनिक हिंदी कविता में गीति तत्व– डॉ सच्चिदानंद तिवारी, पृष्ठ – 54
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ नगेंद्र, पृष्ठ 112
3. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ–264
4. मैथिल कोकिल विद्यापति – डॉक्टर कृष्ण देव झारी, पृष्ठ – 75
5. विद्यापति पदावली, संपादक – रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ–36 (देवी–वंदना)
6. पुरुष परीक्षा, तृतीय परिच्छेद, 'गीतविध कथा', पृष्ठ 139
7. सॉन्स ऑफ विद्यापति – संपादक – डॉ सुभद्र झा
8. कविताकोश, विद्यापति
9. विद्यापति गीत शती (मैथिली) – संपादक– डॉ उमानाथ झा, प्राक्कथन से
10. कविताकोश, विद्यापति
11. गगनांचल – गीत में बचा रहेगा लोक जीवन (लेख)– देवेन्द्र कुमार, पृष्ठ–70
12. चिंतामणि (प्रथम भाग) – रामचंद्र शुक्ल, श्रद्धा और भक्ति